षष्ठ अध्याय

'सप्तकाण्ड रामायण' की प्रासंगिकता

6.1 प्रस्तावना

पूर्व के अध्याय में 'प्रासंगिकता' शब्द की विस्तृत व्याख्या कर चुका हूँ । यहाँ उन व्याख्याओं को दोहराने की आवश्यकता नहीं है । संक्षेप में बस इतना ही कहना आवश्यक होगा कि 'प्रासंगिकता' का मतलब उन सिद्धांतों, नीति-नियमों तथा उन प्राचीन मान्यताओं की आवश्यकता से है जो किसी भी सभ्य तथा सुशासित समाज की आधारशिला है । यह मान्यताएँ ही समाज को सारे नीति-नियमों तथा मर्यादाओं की सभ्य तथा सुसंस्कृत बेड़ियों में जकड़कर उसे कल्याण के पथ पर ले जाकर उसका जीवन आनंद तथा प्रेम से आह्लादित कर देती हैं । यहाँ यह कहना नितान्त आवश्यक है कि हमारे भक्तिकालीन साहित्य की वो महान रचनाएँ ऐसे अनेकों मूल्यों, आदर्शों, नीति-नियमों तथा सिद्धांतों को संजोए हुए हैं जो कि एक महान और समाज-हितकर साहित्य में उपलब्ध होना चाहिए । 'सप्तकाण्ड रामायण' में भी ये सारे मूल्यबोध निहित हैं जो कि समाज कल्याण में सहायक होते हैं ।

6.2. 'सप्तकाण्ड रामायण' की प्रासंगिकता

भक्ति काव्य की प्रासंगिकता की आलोचना करते हुए डॉ. संजय कुमार शर्मा लिखते हैं-

> भक्तिकाल एक महान जनांदोलन का काल था । मध्यकाल में भारत के दक्षिण, उत्तर, पूर्व-पश्चिमी सभी दिशाओं में 'भक्ति' का 'दीप' प्रज्वलित हुआ उसने अंधकार के गर्त में डूबते मध्यकालीन समाज के समक्ष नए और उदात्त लक्ष्य प्रस्तुत किए और कोटि-कोटि हरे हुए दीन, दुर्बल जनों को आत्मसम्मान के साथ अपनी धरती पर खड़े रह सकने का साहस दिया था और

यह काव्य आज भी उतना ही साहस 'मनुष्य' को दे रहा है और भविष्य में भी देता रहेगा।(शर्मा 2008:07)

भक्तिकालीन काव्य की प्रासंगिकता पर विचार करते हुए प्रो. जय प्रकाश लिखते हैं-

भक्तिकाव्य की प्रासंगिकता की चर्चा आवश्यक इसलिए हो जाती है कि भौतिकवादी विचारकों ने उस सबको नकारने का विवेकहीन हठ ठान लिया है, जो उनकी भौतिक आवश्यकताओं से दूरस्थ है ।(मिश्र, संपा प्रथम 2019 :12)

इसी के आगे प्रो.जयप्रकाश लिखते हैं-

सामाजिक परिदृश्य में आतंकवाद, सांप्रदायिक अविश्वास और विद्वेष, संयुक्त परिवार का विघटन, शासनतंत्र की स्वार्थान्धता और प्रजा-उपेक्षा, दरिद्रता और उसके कारण बंधुआ मजदूरी तथा आत्महत्याएँ आदि ऐसी समस्याएँ हैं, जिनका सांकेतिक उल्लेख भी भक्तिकाव्य में है तथा इन समस्याओं के समाधान के उपायों की खोज भी इनमें की जा सकती है ।(मिश्र, संपा प्रथम 2019:29)

इस प्रकार से कहा जा सकता है कि भक्ति काव्य की प्रासंगिकता का अध्ययन आज के वर्तमान समाज के लिए उपकारी ही है । उन तमाम मूल्यों, आदर्शों तथा सामाजिक उतार-चढ़ावों का ज्ञान इस काव्य के अध्ययन से संभव हो सकता है । 'सप्तकाण्ड रामायण' में- राजधर्म, वैदिक संस्कारों, स्वयंवर प्रथा, कर्मों के परिणाम, माता-पिता के प्रति सेवा भावना, दान-प्रथा, स्त्री-धर्म, भ्रातृ प्रेम इत्यादि अनेकों विषयों पर ऐसी अनेकों शिक्षा

मूलक बातें कही गयी हैं जो स्वतः ही ग्रहणीय तथा प्रासंगिक हैं। संक्षेप में उन सभी नीति-नियमों, आदर्शों तथा मान्यताओं का जो 'सप्तकाण्ड रामायण' की गुणावली कही जाएगी, जो उसमें निहित है, उन्हीं गुणों तथा आवश्यकताओं की यहाँ मैं चर्चा करने जा रहा हूँ। इन आवश्यकताओं या प्रासंगिक नीति-नियमों तथा आदर्शों का विषयवार वर्णन द्रष्टव्य है-

6.2.1. कुशल राजधर्म की शिक्षा

एक राजा को या एक शासक को किस प्रकार से प्रजा का पालन करना चाहिए 'सप्तकाण्ड रामायण' से हमें यही शिक्षा प्राप्त होता है। यहाँ उल्लेखित अनेकों राजाओं का उल्लेख मिलता हैं, जो प्रजा को पुत्रवत पालन किया करते हैं। राजा दशरथ के वंशज राजा रघु, दीलिप आदि हो या स्वयं राजा दशरथ या फिर राजा जनक या राम। सभी ने यहाँ यही आदर्श स्थापित किया है कि एक शासक को पुत्रवत रूप में प्रजा का पालन करना चाहिए और यही धर्म भी है। आधुनिक युग में हमने अनेकों ऐसे राजाओं को देखा है जिन्होंने राम-राज्य के उन्हीं आदर्शों को यथावत मानकर अपनी शासन व्यवस्था को सुदृढ़ तथा सफल बनाया है। इसके विपरीत हमें ऐसे भी अनेकों उदाहरण अवश्य ही मिल जाते हैं जो कि धर्म के विरुद्ध शोषण नीति के मद्धेनजर प्रजा को शासित करती थीं। अतः रामायण हमें यही शिक्षा देती है कि राजा का राज धर्म है प्रजापालन, गुरुओं तथा ब्राह्मणों का रक्षण, दुष्ट शक्तियों से राज-समाज की रक्षा, अपने धर्म तथा वचन का सत्यनिष्ठा से पालन इत्यादि। उदाहरण स्वरूप अयोध्या के राजा दशरथ का वर्णन यहाँ आता है। उल्लेख है कि उनके शासन काल में सभी लोग सुख पूर्वक थे। कहीं कोई हत्या आदि कर्म नहीं, कहीं कोई भिखारी नहीं। राजा स्वयं विष्णु भक्त, धर्म पर

शुद्ध मति के थे। दशरथ एक महावीर, सर्वगुण सम्पन्न, धैर्यवान मेरु पर्वत जैसे, क्रोध में शिव समान तथा प्रताप में सूर्य के समान थे। दान करने में महाराज बलि, कर्ण और हरिश्चंद्र जैसा आचरण था उनका। बल में इन्द्र के समान तथा शास्त्र और शस्त्र विद्या में परम निष्णात थे। साम, दाम, दंड, भेद रूपी चारों नीतियों के ज्ञानी राजा दशरथ सप्तद्वीप वाली पृथ्वी के अधिपति थे तथा प्रजा का पुत्रवत पालन तथा रक्षण किया करते थे-

सदाय धर्म्मत रति विष्णुत भकत।

सर्व्वगुणयूत गुण समस्ते महत।।

धैर्य्ये येन मेरु गिरि गम्भीर सागर।

प्रतापत आदित्य क्रोधत महेश्वर।।

दाने बलि कर्ण हरिश्चंद्र समसर।

बले बुद्धि समान भोगत पुरंदर।।

अस्त्रे शस्त्रे शास्त्रे नाना गुणे सूमंडित।

बृहस्पति सम राजा परम पंडित।

शाम दान भेद दंड जाना चारि नय।

महासूर समरे यमको नाहि भय।।

सातोद्वीप पृथिवीर भैला अधिपति।

पुत्रवते लोकक पालंत प्रतिनिति।।(दत्तबरुवा, चौदहवाँ, 2016:13)

राजा जनक भी मिथिला नगर में अपनी प्रजा के लिए एक आदर्श शासक सिद्ध हुए । उन्होंने भी अपनी प्रजा का पुत्रवत पालन किया । राजा जनका कोई साधारण राजा नहीं थे । वे एक महा तपस्वी और राजर्षी शासक थे-

ताहार निकटे आछे मिथिला नगर ।

आछे सेहि नगरे जनक नरेश्वर ।।

महातपशील राजा राजऋषिबर ।

पुत्रवते पाले प्रजा धर्म्मत तत्पर ।।(दत्तबरुवा 2016:51)

उस काल में राजा अपनी संतान को स्वयं भी राज्य शासन की नीति की शिक्षा देते थे जिससे कि उनका पुत्र भी आने वाले काल में महानतम राजा बनकर उनके कुल का गौरव बढ़ाए । राम को शासन की नीति तथा गुणों और लक्षणों के विषय में राजा दशरथ ज्ञान देते है । वे कहते हैं कि राज-काज समझकर जनता का पालन करना उचित है । अपना-पराया का फर्क किए बगैर जनता का पालन करना चाहिए । संधि-विग्रह का तत्व, आसन, दुधारी नीति, मित्रता और अभियान आदि छः गुणों का पालन, ये छः गुण ही एक राजा के लक्षण हैं । इस प्रकार दशरथ राम को राजधर्म की शिक्षा देते हुए कहते हैं-

जनक पालिबा बूजिबाहा राज काज ।

पूण्य योगे तोमाक पातिबो युवराज ।।

बुलिते नलागे तूमि शोभन चरित ।

स्नेहरुपे त्रिजगते पालिबाहा हित ।।

आपोन परक किछ्रू नेदेखिबि भिन ।

जन प्रतिपालिबे जानिबे छयगुण ।

सन्धि बिग्रहर तत्व आवर आसन ।

दैव्ध सख्य यान छयगुणे दिबे मन ।।

एहि छय गुणे हय राजार लक्षण ।

सर्ब्बकाले सूखे तेवे बंचे राजागण ।।(दत्तबरुवा 2016:105)

‘सप्तकाण्ड रामायण’ की यह विशेषता हैं कि यहाँ राक्षस भी नीति की बात को जानता है । कुंभकर्ण तथा विभिषण और विराध जैसे राक्षस भी नीति की शिक्षा देते हुए देखे जाते हैं । कुम्भकर्ण एक स्थान पर रावण को भी शिक्षा देते हुए कहते हैं कि राजाओं की बुद्धि को भी यदि नीति की बेड़ी पहनाकर न रखा जाए तो वह भी मतवाले हाथी सदृश विनाशक बन जाता है । वे मंत्रियों को डांटते हुए कहते हैं कि ये सब मंत्रिगण राजा के विरोधी हैं क्योंकि अंधे की भांति ये मंत्रीगण राजा जो कहता है उसी की सराहना करते हैं । उसे सही राह नहीं दिखाते । वे कहते हैं-

नृपतिसबर बुद्धि मत्त हस्ती गओं ।

नीति आङ्कुशेके यदि नकरिले सओं ।।

मंत्री हैया राजार बिरुद्धे मति लय ।

मिछातेसे भूञ्जा राज्य चोरर आन्वय ।।

यि कार्य्यक करन्त ताहाके बोलया भाल ।

तूमि मंत्रीसकल अन्धला येन काल ।।(दत्तबरुवा 2016:378)

इस प्रकार से 'सप्तकाण्ड रामायण' में राजधर्म की शिक्षा भी मिलती है । रामायण के अन्त में भी राम अपने सम्पूर्ण राज्य का बँटवारा कर चारों भाइयों के आठों पुत्रों को स्थापित कर राजधर्म का सुंदर उदाहरण देते हैं।

भरत के दोनों पुत्र तक्षक तथा अंगद में से तक्षक को तक्षकपुरी (तक्षशीला) का राजा बनाकर वर्तमान पाकिस्तान के रवालापींडी में बसाते हैं तथा पुष्कर को पुष्करावती नगरी गांधार का राजा बना देते हैं जो कि वर्तमान में पेशावर (पाकिस्तान) में है ।

तत्पश्चात लक्ष्मण के दोनों पुत्रों अंगद और चन्द्रकेतु को भी स्थापित किया जाता है । अंगद को अंगदियापुर (वर्तमान हिमाचल प्रदेश) का राजा बनाया जाता है तथा चन्द्रकेतु को चंद्रावती नगरी (वर्तमान गोरखपुर के आस-पास) का राजा बनाया गया ।

शत्रुघ्न के पुत्र सुचरित या सुषेण को विदिशपुर वर्तमान (विदिशा, मध्य प्रदेश) का राजा बनाया गया तथा सुबाहु को मथुरापुरी का राजा बनाया जाता है ।

राम के दोनों पुत्रों लव को उत्तर कौसल का राज्य लवपुरी या अमरावती नगर का राजा बनाया जाता है जो वर्तमान (पाकिस्तान) में है तथा कुश को दक्षिण कौशल नगरी में कुशावाती नगरी का राजा बनाते हैं जो वर्तमान में विंध्यपवर्त के अंचल में बसी, बिलासपुर, छत्तीसगढ़ में है ।

इस प्रकार से सम्पूर्ण राज्य उत्तराधिकारियों में बाँट देने पर किसी प्रकार का मतभेद नहीं हुआ । यही राजधर्म है ।

6.2.2. वैदिक संस्कारों का पालन

डॉ. सुशील कुमार पाण्डेय 'संस्कार' शब्द की विषद व्याख्या करते हुए कहते हैं,-

> शरीर एवं वस्तुओं की शुद्धि के लिए उनके विकास के साथ समय-समय पर जो कर्म किये जाते हैं उन्हें संस्कार कहते हैं।(पांडेय 2020:101)

वेद-पुराणों, शास्त्रों तथा पौराणिक इतिहास की माने तो आज के हिन्दू कहे जाने वाले धर्म या संस्कृति का मूल रूप वेदों में निहित है। इसी हेतु इस हिन्दू धर्म को वेद-धर्म भी कहा जाता है जिसका कारण हिन्दू धर्म में समस्त संस्कारों रीति-नीतियों, आदर्शों तथा नियम-निष्ठाओं का सम्पूर्ण रूप वेदों से ही लिया गया माना जाता है। किसी भी प्रकार के पुजा-पाठ में प्रथमतः वैदिक श्लोक द्वारा ही संकल्प कराया जाना भी इस बात को ही प्रमाणित करता है। अतः सभी वैदिक रीति-रिवाजों तथा आदर्शों का यहाँ रामायण में उल्लेख हुआ है।

केकय राज्य के राजा केकय की पुत्री कैकयी के स्वयंवर सभा में उपस्थित होने पर अयोध्यापति राजा दशरथ को श्रेष्ठ जानकर केकयराज ने अपने पात्र-मित्र तथा पुत्र के साथ दशरथ का स्वागत किया। वैदिक रीति या हिन्दू रीति-रीवाजों के अनुसार हम अतिथी का सत्कार प्रथमतः उसके पाँव धो कर करते हैं। केकयराज ने भी राजा दशरथ की सेवा उनके पाँव धोकर छह अर्घ्यो से पूजा की। कुसुम, चन्दन, वस्त्र-आभूषण से अर्चना कर स्तुति की तथा पंचामृत सम्मिलित भोजन से संतुष्ट किया। अतः यह रीति वैदिक है तथा इसका पालन यहाँ हुआ है-

> सादरे भृंगार धरि प्रक्षालिला पाव।
>
> षडर्घे करिला पूजा बूलि बहु भाव॥

कुसूम चन्दन दिव्य बस्त्र अलंकार ।

नाना द्रव्य दिया अर्च्चिलंत बारे बार ।।

बूलि आति स्तुति बाणी संतोषिला मन ।

षडरसे पंचामृते कराइल भोजन ।।

कर्पूर ताम्बूल दिला भोजनर शेषे ।

गृह ब्यवहार राजा करिला निशेषे ।।(दत्तबरुवा 2016:14)

इस प्रकार से गृहस्थ-धर्म का यहाँ पालन करने की शिक्षा आने वाले युगों में निश्चय ही प्रासंगिक है ।

वैदिक रीति-रिवाजों में सोलह संस्कारों की बात कही गयी है । इन सोलह संस्कारों का मैंने पूर्व के अध्याय में उल्लेख किया है । यहाँ सिर्फ 'सप्तकाण्ड रामायण' में उल्लेखित संस्कारों का वर्णन किया जाएगा । जैसे गर्भाधान संस्कार, पुंसवन संस्कार, नामकरण संस्कार इत्यादि । यहाँ उल्लेख करना उचित होगा कि केवल पुत्र का ही नहीं अपितु कन्या का भी इस प्रकार से संस्कार कराया जाता था । जनक नन्दनी राजा दशरथ की पुत्री सीता का भी इसी प्रकार से संस्कार हुआ था ।

गृहस्थ का धर्म केवल अतिथियों की सेवा करना ही नहीं है, वरण गुरु-ब्राह्मण आदि की सेवा तथा सत्कार आदि करना भी है । जब विश्वामित्र राजा दशरथ के पास आएं तब राजा दशरथ विश्वामित्र का भी विधि पूर्वक सम्मान करते हैं और विधि पूर्वक समाज के साथ खड़े होकर प्रणाम कर उनकी चरण धूलि को मस्तक पर लगाकर स्वर्ण-आसन देकर चरण धोकर उनकी पूजा करते हैं,-

देखिया नृपति समाजे सहिति

उठीला आति सत्वरे ।

प्रणाम करिया चरणर धूलि

माथात लैला सादरे ।।

सुवर्ण आसान आनिया नृपति

समाजर माजे दिला ।

समस्तके आशी– ब्र्बार्द करि ऋषि

आसने आसि बसिला ।।

आपूनि चरण धूवाई दशरथे

पादोदक लैला माथे ।

परम सादरे सअर्धे ऋषिक

पूजिला पृथिवीनाथे ।।(दत्तबरुवा 2016:56)

राम-विवाह के समय अधिवास तथा पितृ कार्य आदि किया गया । विवाह पूरे वैदिक विधि-विधान अनुसार सम्पन्न कर कन्यादान आदि की प्रथा भी सम्पूर्ण की गयी । राजा दशरथ की मृत्यु के पश्चात भरत ने भी पूरे वैदिक-विधान से पिता की अन्त्येष्टि क्रिया को पूर्ण किया तथा दस दिन तक तृण शैया पर सोकर दश पिण्ड दिया और त्रि-दशा कर्म भी किया । एकादश, द्वादश श्राद्ध किए गए तत्पश्चात ब्राह्मणों को दान भी दिया गया । इस प्रकार इन सम्पूर्ण वैदिक नियमों का पालन यहाँ संसार को सदा से प्रेरणा देता आया है । यह प्रासंगिक ही है-

शून्यथान देखिया सबारे मन जीण ।

तृण शय्या दोभाये करिला दशदिन ।।

दशपिण्ड दिलन्त आवर दशकर्म्म ।

त्रिदशा करिला यतेक कूलधर्म्म ।।

एकदशा दोवादशा श्राद्ध निबर्तिल ।

नानाबिध दान पाछे ब्राह्मणक दिला ।।(दत्तबरुवा 2016:158)

इस प्रकार से वैदिक धर्म के समस्त संस्कारों का यहाँ यथावत पालन समाज को युगों-युगों से प्रेरित और लाभान्वित करते आ रहा है। ये रीति-निति निश्चय ही प्रासंगिक हैं।

6.2.3. स्वयंवर प्रथा

'सप्तकाण्ड रामायण' में कई बार स्वयंर प्रथा का उल्लेख हुआ है। यह प्रथा इस बात को प्रमाणित करती है कि उस समय स्त्रियों को स्वयं वर चुनने का अधिकार प्राप्त था। राजा दशरथ तथा राम दोनों के ही विवाह के अवसर पर स्वयंवर सभा का उल्लेख इसी बात को प्रमाणित करता है। आदिकाण्ड में ही कैकेयी स्वयंवर की कथा आती है। वहाँ राजा केकय स्वयं अपनी पुत्री द्वारा उसके स्वयं वर चयन की बात की घोषणा करते हुए कहते हैं कि उनकी पुत्री बहुत शिष्ट है। वह अपनी इच्छा से किसी भी वर का वरण करेंगी,-

बूलिला सबाको पाचे सूमधूर वाणी ।

कैकेयी नामत मोर आछे कन्याखानि ।।

आती शिष्टमती कन्या आसि समज्याक ।

आपोन इच्छाये कन्या बरय याहाक ।।(दत्तबरुवा 2016:15)

स्वयंवर प्रथा राजा दशरथ के बाद राम के विवाह के समय भी देखने को मिलता है । यह स्वयंवर तो विश्व में अद्‌भुत हुआ । इस स्वयंवर की खास विशेषता यह थी कि इसमें न केवल स्त्री को अपना वर चुनने की आजादी थी बल्कि वर के गुण और बल का परीक्षण भी संसार भर के राजाओं में किया जाता था, जिससे कि समस्त संसार में उत्तम वर का चयन हो सके । राजा जनक ने भी समस्त संसार के राजाओं को सीता स्वयंवर में उपस्थित होने की अनुमति दी थी,-

अनन्तरे माति आनि दूत बहुतर ।

समस्तके बचन बुलिला नृपबर ।।

देशे देशे यत राजा आछे निरंतर ।

समस्तके कह जानकीर सयम्बर ।।(दत्तबरुवा 2016:66)

इस प्रकार से स्त्रियों को स्वयं वर चयन करने की अनुमति यहाँ स्त्री के प्रति सम्मान तथा उनके स्वयं वर चयन कर सुख पूर्वक रहने देने की महान भावना को दर्शाती है जो अत्यंत ही प्रासंगिक है ।

6.2.4. कर्मफल का परिणाम

‘सप्तकांड रामायण’ एक ऐसा महान ग्रंथ है जिसमें ऐसी हजारों शिक्षाएँ, आदर्श, रीति-नितियाँ तथा कर्म फल के अनेकों परिणाम मौजुद है । ये परिणाम तथा शिक्षाएँ समाज को कैसा आचरण रखना चाहिए तथा क्या करना चाहिए और क्या करने से क्या परिणाम होते हैं, इन्हीं बातों की शिक्षा देती हैं । जैसे सबसे महान

उदाहरण राजा दशरथ जैसे महान और आदर्शवान राजा का आता है । राजा सर्वगुण सम्पन्न होते हुए भी एक निर्दोष ब्राह्मण की हत्या के पाप के कारण पुत्र वियोग में अपने प्राण गँवा देते हैं । यही प्रमाणित होता हैं कि हम जैसा कर्म या आचरण करेंगे हमें उसका उसी अनुरूप फल भी प्राप्त होगा । राजा ने पूर्व जन्म में बड़ी ही कठोर तपस्या तथा भगवान की भक्ति की थी जिससे उन्हें राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न जैसे स्वयं नारायण चार स्वरूप में पुत्र रूप में प्राप्त हुए । फिर राजा द्वारा एक निर्दोष ब्राह्मण कुमार की मृत्यु हो जाती है, जिसके परिणाम स्वरूप राजा को पुत्र वियोग में उसी प्रकार से मृत्यु प्राप्त होने का श्राप भी मिल जाता है । दोनों ब्राह्मण माता-पिता पुत्र शोक से दग्ध होकर राजा दशरथ को श्राप देते हुए कहते हैं कि उनके पुत्र का वध कर के भी दशरथ जीवित हैं ? सूर्यवंशी राजा होकर भी उन्होंने घोर कुकर्म किया है । दो अंधे माता-पिता में घोर संताप भड़काकर राजा ने बुरा किया । वे राजा को श्राप देकर भस्म कर देते परंतु चूंकि राजा ने अनजाने में ये दुष्कर्म किया है । अतः वे राजा को यही श्राप देते हैं कि जिस प्रकार से पुत्र शोक से दोनों अंधे माता-पिता प्राण दे रहे हैं, ठीक उसी प्रकार राजा को भी पुत्रशोक से प्राण देना होगा,-

मोर पूत्रबधी शुन दशरथ पापी ।

ब्रह्मबध करि तई जीयस तथापि ।।

सुर्य्यवंशी राजा हुया करिलि अकर्म ।

पूत्रक बधिया दिलि आमासाक मर्म्म ।।

ज्वालिलि आमार तइ दारुण संताप ।

शुन तोक राजा दीओं निदारूण शाप ।।

जानिया मारिलि हंते तनयक मोर ।

करिलोहो हंते भस्म दिया शाप घोर ।।

किन्तु मोर पूत्रक मारिलि अज्ञानत ।

ब्रह्मशाप दिया तोक नकरोहो हत ।।

तथापितो शापो तोक शुनरे दुर्ज्जन ।

पूत्रशोके मरो जेन आमि दूइ जन ॥

तइ पूत्रशोके राजा मरिबि निश्चय ।

आने येन ब्राहमणर द्रोह नाचरय ।।(दत्तबरुवा 2016:26)

इस प्रकार यहाँ कर्मों के फल-चक्र का एक महान उदाहरण देखेने को मिलता है ।

‘सप्तकाण्ड रामायण’ में केवल यही एक उदाहरण नहीं है । ऐसे अनेकों उदाहरण यहाँ अवश्य ही मौजुद हैं । बालि द्वारा अपने छोटे भाई की भार्या को रख लेना तथा छोटे भाई को राज्य से भगा देना भी एक निंदनीय दुष्कर्म है । यह दुष्कर्म ही बालि की मृत्यु का भी कारण बन जाता है । राम बालि के कृत्यों का उचित दण्ड देकर उसे कहते हैं कि छोटे भाई की वधू का हरण कर के तथा उस भाई को राज्य से निकाल कर उसने अधर्म किया था। इसी हेतु उसे मारा गया-

कार्य्यत लखिलो तई पापीष्ठ बानर ।

कनिष्ठर भार्य्याक करिया आछ घर ।।

सुग्रीव हेनय भाईक देशर डाकिलि ।

भ्रातृबधू संबरिया बार यश पाईलि ।।(दत्तबरुवा 2016:247)

रावण का भी अंत में यही हश्र होता है । वह सीता का हरण करता है और अन्त में समस्त बंधु-बांधवों तथा पुत्रों-भ्राताओं सहित समस्त राक्षश जाति के संहार का कारण बन जाता है । उसके स्त्री-हरण पाप का भागी तथा सहायक बनने वाले प्रत्येक राक्षश जाति का समूल विनाश इसी बात को प्रमाणित करता है कि कर्म का फल कर्म के अनुसार ही मिलता है । रावण ने बुरा कर्म किया तथा उसका साथ जिसने भी दिया उन सभी का रावण सहित संहार हो गया । विभीषण ने पुण्य कर्म किए तथा सदा धर्म का साथ दिया । इसीलिए वह योग्य सिद्ध हुए । विभीषण समस्त लंका का राज्य तथा रामभक्ति प्राप्त करने के साथ-साथ इतिहास में महान नाम अंकित करा युगों-युगों तक अमर हो गए । सुग्रीव ने राम का साथ दिया तथा धर्माचरण किया और इसी भक्ति के परिणाम स्वरूप उन्हें उनकी भार्या प्राप्त हुई तथा वह किष्किंध्या का राजा बने और स्वयं भगवान राम की मित्रता भी प्राप्त की । अतः यह सब कार्य का फल रूपी विषय अत्यंत ही प्रासंगिकि है ।

6.2.5. माता-पिता की सेवा

अनेकों धर्म ग्रंथों, शास्त्रों, पुस्तकों तथा महापुरुषों की वाणियों में हम माता-पिता की सेवा करने की बात को देखते या सुनते हैं । राम काव्य में यह यथार्त ही प्रमाणित होता है । माता-पिता की सेवा ही परम धर्म है । स्वयं राम माता-पिता के हितार्थ वनवास भी भोगने को तैयार हो जाते हैं । जब कैकयी द्वारा वचन माँगने पर दशरथ विषाद के कारण द्रवित हो जाते हैं तब राम के आने के पश्चात दुखी होकर रोते हैं । कुछ बोल नहीं पाते कि राम को वन का दुख भोगने जाने को कहने से ही कहीं राजा के प्राण ही न निकल जाएं । राम पिता की ऐसी विषाद अवस्था देखकर अत्यंत ही द्रवित हो उठते हैं तथा माता-पिता के हितार्थ सारे संसार से लड़ने को तैयार हो जाते हैं । राम कहते हैं कि वे पर्वतों, नागों, चद्र इत्यादी को भी मार देंगे । सभी दानव-देवता सबको

परास्त कर देंगे अपने पिता के लिए। पुनः पुत्र-धर्म की व्याख्या करते हुए वे कहते हैं कि पुत्र होकर जो पिता की रक्षा नहीं करता, वह पुत्र पृथ्वी का महाभार ही है। जो अपने माता-पिता का पालन नहीं करता, उनके मरने की प्रतीक्षा करे वह नरक गामी ही है। पिता की आज्ञा पालन ना करने वालों पर धिक्कार है। राम कहते हैं कि पिता दशरथ अगर आज्ञा दें तो वे घर घर-भीख मांग सकते हैं तथा वनवासी भी बन सकते हैं-

पुत्र हुया नरकय पितृक निस्तार।

सिटो पुत्र भैल पृथिवीर महाभार ।।

जीयन्ते नोपोषे मरीबाक बाट चाइ।

नरक भुंजिते सिटो करय उपाय ।।

बापर आज्ञाक बाधे आछो ताक धिक।

आज्ञा करा येवे घरे घरे मागो भिख ।।

देशान्तर करो नोहो हाते खांडा धरो।

हृदयत खांडा हानि प्राण परिहरो ।।

निष्ठे बोलो यद्यपि बापर आज्ञा पाओं।

राज्य परिहरि तेवे बनबासे याओ ।।(दत्तबरुवा 2016:115)

राजा दशरथ की आज्ञा पाकर मंत्री सुमंत्र राम के संग वन तक गए। परंतु जब राघव ने पुनः लौटकर राज्य जाकर राजा की सेवा कार्य में लगने को कहा तब मंत्री ने जाने से मना कर दिया और कहने लगे कि वे राज्य नहीं लौटेंगे। इस पर अपनी पितृ भक्ति का स्मरण करा राघव मंत्री को उनके कर्तव्यों की याद दिलाते हैं

और कहते हैं कि माता तथा पिता को उनकी ओर से ये कहें कि उनका पुत्र सत्य के पालन हेतु वनवास में है । उनका पुत्र राम आज्ञा मिले तो नरक भी जा सकता है-

बापर चरण बंदिया बूलिबि

तोमात राम भगत ।

आछों बनबास तयू सत्य पालि

नरक जाईबे शकत ।।(दत्तबरुवा 2016:138)

पिता के प्रति भक्ति केवल राम में ही नहीं अपितु भरत, शत्रुघ्न आदि में भी है । भरत जब अपने मामा के राज्य से लौटकर आते हैं तब राज्य को अस्त-व्यस्त तथा पिता को मृत देखकर व्याकुल हो उठते हैं । भरत को सबसे अधिक दुख इस बात का होता है कि पिता तो उन्हें त्यागकर यमलोक चले गए परंतु पिता समान बड़े भाई राम भी उनके कारण वन में हैं । अतः पिता समान भैया को पुनः राज्य लौटा लाने तथा स्वयं पिता की चौदह वर्ष वनवास की आज्ञा का पालन करने हेतु भरत स्वयं प्रस्तुत होकर वन को चल देते हैं । भरत कहते हैं कि वे प्रेमपूर्वक राम को लाकर राज्य में प्रतिष्ठित करेंगे तथा उनकी आज्ञा का भी पालन करेंगे । अतः यहाँ पर माता-पिता की जो सेवा भावना का दिग्दर्शन हमें मिलता हैं वह अन्यत्र दुर्लभ है-

चलिबोहो निश्चय रामक आनिबाक ।

कातर करोहो गुरु निदिबाहा हाक ।।

प्रीति करि आनि थापि रामक राज्यत ।

मई बने थाकि पालो पितृर शपत ।।(दत्तबरुवा 2016:160)

राम भी पितृ वचन पालन में पर्वत समान अटल हैं। भरत द्वारा राज्य लौट जाने की बात सुनकर राम को दुख होता है। वे कहते हैं कि यदि सातों समुद्रों का सम्पूर्ण जल सुख जाए, गोल चंद्रमा की सारी कान्ति घट जाए तथा पाताल तक सातों लोकों का विनाश हो जाए और पर्वत भी ढह जाए फिर भी वे पिता के वचनों को नहीं त्यागेंगे। सूर्य ग्रह भी यदि पृथ्वी पर टूटकर गीर पड़े तथा राम के प्राण ही क्यों न संकट में पड़ जाएं पर फिर भी वे पितृ वचन का त्याग नहीं करेंगे। राम का वचन अटूट है। अतः राम भरत को लौट जाने के लिए कहते हैं,-

पूर्णचन्द्रमार कान्ति हरय सकल।

येबे शुकाइ परे सात सागरर जल।।

पाताल पर्य्यंते सातो पृथिबी नशय।

मेरु मंदरक आदि पर्ब्बत खसय।।

सूर्य आदि ग्रह ख़सि भूमित परिब।

तथापितों आमि पितृबाक्यक नेरिब।।

प्राणर संशय येवे मिलय आमार।

तथापितो नजाईबे मोहोर अंगीकार।।(दत्तबरुवा 2016:174)

इस प्रकार से 'सप्तकाण्ड रामायण' में यह माता-पिता की सेवा की भावना जगत प्रसिद्ध है तथा आनेवाले समाज के लिए प्रासंगिक भी है।

6.2.6. दान प्रथा

आज हमारा भारत ही नहीं बल्कि पूरा विश्व वैश्विक महामारी कोरोना से ग्रसित है । भारत में भी इस विपत्ति से लड़ने हेतु तथा सम्पूर्ण देश के रक्षार्थ और अर्थ व्यवस्था को पुनः खड़ा करने के लिए देश के तमाम बड़े-बड़े उद्धोगपतियों, दाताओं बड़े-बड़े धार्मिक स्थलों तथा मंदिरों द्वारा 'प्रधान मंत्री राहत कोश' में दान देकर देश को पुनः खड़ा करने की कोशिस की जा रही हैं । यह निश्चय ही प्रशंसनिय हैं । दान की यह प्रथा हमारी वैदिक परम्परा में सर्वप्राचीन परम्परा है । युगों-युगों से इस प्रथा का प्रचलन चला आ रहा है । त्रेता युग में राजा बलि की दानवीरता जगत प्रसिद्ध है । त्रेता युग में ही इच्छवाकु वंश में राजा रघु, राम, भरत इत्यादि राजा हुए जिन्होंने दान प्रथा का प्रचलन आगे बढ़ाया । द्वापर युग में पुनः कर्ण जैसे महादानी की भी सराहना की जाती है, जिन्होने इन्द्र को कवच-कुण्डल रुपी अपने प्राण का ही दान दे दिया था । फिर एकलव्य की कथा तो गुरु के प्रति श्रद्धा और दान का सर्वोच्च उदाहरण प्रस्तुत करती है । इन्द्र द्वारा सहायता हेतु याचना करने पर राजा दशरथ स्वयं युद्ध में असुरों का संहार करने का वचन दे देते हैं । इसी प्रसंग में कवि माधवदेव राजा दशरथ की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं कि सूर्य वंश में ऐसा कोई भी राजा नहीं हुआ जिसने प्राण भी दान माँगने पर असंतोष दिखाकर याचक को खाली हाथ लौटाया हो,-

> सुर्य्यबंशे राजा हेन नाहि एकोजन ।
>
> प्राणदान खुजिलेओ हईबे निबर्तन ।।(दत्तबरुवा 2016:227)

'श्रीमद्भगवद्गीता' में भी दान प्रथा का महत्व बताते हुए श्री कृष्ण स्वयं कहते हैं कि यज्ञ, दान तथा तपस्या के कर्मों को कभी भी त्यागना नहीं चाहिए, उसे अवश्य ही करना चाहिए । यज्ञ, दान, तपस्या आदि ये महात्मा जनों को भी शुद्ध कर देते हैं-

यज्ञदानतप: कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।

यज्ञों दानं तपश्चचैव पावनानि मनीषिणाम् ।।(प्रभुपाद 2011:523)

'सप्तकाण्ड रामायण' में भी दान की प्रथा सर्वथा हर समारोह में देखी गयी हैं । राम लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न के विवाह समारोह या दशरथ की अन्त्येष्टि क्रिया के पश्चात दान दिया ही गया है । यहाँ तक कि वनगमन के समय भी राम-सीता ने अपनी सम्पूर्ण संचित सम्पत्ति का दान कर दिया था । राम के जन्म के समय भी राजा दशरथ ने अनेकों वस्त्राभूषण तथा वस्तुएँ दान में दी थीं । राजा दशरथ ने पुत्र कल्याण की इच्छा से जो दान दिया, कवि माधव देव ने कुछ इन शब्दों में वर्णित किया है-

मनत बांछिया राजा पूत्रर कल्याण ।

नपारि कहिबे यत करिलन्त दान ।(दत्तबरुवा 2016:47)

6.2.7. स्त्री-धर्म की शिक्षा

स्त्री के स्वभाव तथा धर्म की शिक्षा का बड़ा प्रबल उदाहरण 'सप्तकाण्ड रामायण' में उपलब्ध होता है । सीता, अनुसूया, सुमित्रा आदि स्त्रियों ने स्त्री धर्म के आदर्श रूप की ऐसी शिक्षा दी है जो कि आने वाले समाज के लिए प्रेरणा तथा आदर्श की एक महान परिभाषा बन गयी है । ये स्त्रियाँ अपने मन में भी अपने स्वामी के अतिरिक्त किसी और का ध्यान नहीं करती । ये स्त्री जाति की ऐसी महान सति नारियाँ हैं जिसका जीवन इतना दुखमय व्यतीत होने पर भी व्याकुल नहीं हुई तथा मरते दम तक इन्होंने मर्यादा नहीं त्यागा । राम के संग विवाह होने पर राजा जनक ने स्वयं पुत्री सीता को कुछ स्त्री धर्म की शिक्षाएँ दी थीं । जनक कहते हैं कि सीता त्रिभुवन में अनुपम महासति हैं । ये उत्तम वर राम ही उनका भूषण हैं । वे कभी भी अपने पति के वचन का

उल्लंघन न करें। एक भाव से सदैव उनकी सेवा करती रहें। सास-श्वसुर की सेवा करना तथा किसी भी देवर की अवहेलना न करना ही उनका धर्म है। सबपर दया रखें जिससे उनका निर्मल यश समस्त संसार में व्याप्त हो जाएगा। उन्हें इस लोक का सुख तथा परलोक का आनंद भी मिल जाएगा।

राम के वन-गमन के आदेश को सुनकर माता कौशल्या बहुत विचलित हो गयी थीं। वे अपना प्राण तक त्याग देने की बात सोच कर राम से पिता की आज्ञा अमान्य कर देने की प्रार्थना करने लगी थीं। वे पुनः कहती हैं कि अगर राम वन जाएं तो वे भी वन में चलेंगी। माता को विचलित देखकर राम माता कौशल्या को स्त्री धर्म की शिक्षा देते हुए कहते हैं कि स्त्री का धर्म है पति की सेवा-शुश्रुषा करना। अतः उसी धर्म का निर्वाह करें। पति धर्म का पालन करने से स्वर्ग का सुख मिलता है। स्वामी के वचनों की अवहेलना करने पर अधर्म ही होगा-

तोमार स्वामीसे देव शुश्रूषा करिबा।

ताहान बचन माव शिरत धरिबा।।

पतिब्रता धर्म्मे आई स्वर्गे चलि जाईबा।

तान बाक्य हेला करि अधर्म्मक पाईबा।(दत्तबरुवा 2016:121)

जब राघव सब कुछ त्याग कर वन को जाने को उद्धत हुए तब जनक नंदनी सीता व्याकुल होकर पति श्रीराम से निवेदन करने लगीं कि उन्हें छोड़ कर ना जाएँ। सीता एक पतिव्रता नारी हैं। अतः ऐसी पत्नी को छोडकर वन को जाना ठीक नहीं है। यही निवेदन करते हुए सीता राघव के चरणों में गीर पड़ी तथा राम का अंचल पकड़ लिया-

किनो अपराधे प्रभू तुमि मोक

शोक अगनित दिया।

आमि पतिब्रता नारीक गोसाई

चलिला केने तेजिया ।।

नयाईबाहा प्रभू बुलिया जानकी

आंचलत घरिलंत ।

येन लक्ष्मीदेवी ईश्वर बिष्णूर

चरणत परिलन्त ।।(दत्तबरुवा 2016:124)

सीता इसी प्रकार से रुदन करने लगीं । वे राम को तरह-तरह की बातें कहती हैं । सीता कहती हैं कि वे राम की वन में सदा सेवा करती रहेंगी । जिस प्रकार से शची देवी स्वर्ग में इन्द्र की सेवा करती हैं तथा भ्रमण करती हैं । उसी प्रकार सीता भी सुख पूर्वक रहेंगी । ये वन-पर्वत ही उनके लिए रत्नमय तथा क्रीडा स्थली होंगी । रति कामदेव के साथ जैसे रहती हैं, वैसे ही सीता भी रहेंगी । सीता आगे कहती हैं कि पूर्वकाल में माता ने उन्हें शिक्षा दिया था कि पति से पहले भोजन ना करना । वही वचन वहाँ भी पालन करेंगी । अतः सीता इसी प्रकार से राम को अपने संग ले चलने हेतु आग्रह करती हैं-

ऊत्सूक मनक गोसाई नकरियो भंग ।

तूमि समे बनक जाईबाक बर रंग ।।

तूमि समे भ्रमण करिबो बनमाज ।

जेहेन स्वर्गत शचीदेवी देवराज ।।

रत्नमय बिचित्र पर्ब्बत बन देश ।

बिबिध पूष्पित बन सूगन्धि निषेश ।।

समूचित क्रीडा स्थान कूँजर विशेष ।

कामे समे रति जेन करिबो आशेष ।।

मावे मोक पुर्ब्बत शिखाईला हाते धरि ।

नकरिबा भोजन स्वामीक परिहरि ।।

सिसब बचन आमि शिरोगते धरो ।

नदी बने तोमार तूलते अनूसरो ।।(दत्तबरुवा 2016:125)

सीता की करुण दशा देखकर राम का मन भी द्रवित हो उठता है । जब सीता राम से अंतिम बार यह कहती हैं कि अगर राम उन्हें छोडकर चले जाएंगे तो उनके निष्फल जीवन को अब कटार का सहारा लेना पड़ेगा। तभी राम सीता का यह समर्पण देखकर तथा उनके हृदय में पति के प्रति धर्म में अडिग देखकर उन्हें अपने संग चलने की अनुमति भी दे देते हैं-

रामर बचन शुनी जानकी गोसानी ।

क्रंदन करिया देवी बूलिलंत बाणी ।।

तूमि एरि गैले मोर जीवन निष्फल ।

कटारत भर नूहि भूँजिबो गरल ।।

सीतार बिलापे चित्त रामर द्रविल ।

बनक जाईबाक तांक अनूमति दिल ।।(दत्तबरुवा 2016:126)

स्त्री का धर्म यहाँ केवल पति के प्रति ही नहीं दिखाई पड़ता है । बल्कि स्त्री-धर्म की महानता सभी रिश्तों मे आदर्शवादी तथा सराहनीय है । माता सुमित्रा पुत्र लक्ष्मण के मुख से राम संग वन जाने के प्रसंग को सुनकर बहुत खुश हो जाती हैं । वे पुत्र लक्ष्मण को उसके कर्तव्य के प्रति और प्रोत्साहित करते हुए राम के संग वन जाने के लिए कहती हैं । सुमित्रा यहाँ कहती हैं कि उनका मातृत्व जीवन सफल हो गया जो उनका पुत्र राम की सेवा में लग गया । सुमित्रा माता कहती हैं कि राम-काज में लग कर आज लक्ष्मण जैसा पुत्र पाकर माता सुमित्रा भी जन्म सफल मान बैठी हैं-

साफल जीवन मोर कल्याण साधिलो ।

कत जन्म पूण्ये मई हेन पूत्र पाईलो ।।

उद्धारिलि बंशक साम्फल ऊतपति ।

ज्येष्ठ भाईत भैल तोर ईमत भकति ।।(दत्तबरुवा 2016:132)

इस प्रकार से यहाँ स्त्री धर्म की मर्यादा तथा आदर्श भावना निश्चय ही प्रासंगिक है ।

6.2.8. भ्रातृ प्रेम का आदर्श रूप

'सप्तकाण्ड रामायण' में भ्रातृ प्रेम का वह आदर्श रूप प्रस्तुत हुआ है जैसा अन्यत्र देखने को नहीं मिलता । राम' लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न में एक दूसरे के प्रति ऐसी भक्ति तथा त्याग की भावना भरी हुई है कि जिसकी सराहना सम्पूर्ण जगत करता आया है । माता कैकेयी के कहने पर राम एक बार में राज्य त्याग कर चौदह वर्ष का वनवास जीवन ग्रहण कर लेते हैं । भरत के लिए राज्य त्याग कर राम वनवास चले जाते हैं । भरत को जब पता चलता हैं तब वे भी सेना सहित राम को वन से लौटा कर राज्य देना चाहते हैं तथा खुद वनवासी का

जीवन व्यतीत करने का संकल्प ले लेते हैं। शत्रुघ्न भी सभी भाइयों के अनुगामी ही सुख का त्याग कर वनवासी की भाँति दुख में जीवन बिताते हैं। लक्ष्मण और भरत की भ्राता राम के प्रति जो भक्ति है वह इतनी वंदनीय तथा श्रद्धेय है कि कथा का प्राण सुदृथ बन जाते हैं। राम के हृदय में भाई के प्रति अगाध प्रेम है। उत्तरकाण्ड मे भी कोई भी राज्य ग्रहण करने के बजाय राम चरणों की सेवा में एक साथ रहते हैं। भरत को अन्तमें राज्य देने पर भी भरत नहीं लेते। लक्ष्मण का त्याग करने पर राम तो व्याकुल और व्यथित ही हो उठते हैं तथा लक्ष्मण भी भ्राता राम के वियोग में प्राण ताज देते हैं। राम भी भाई लक्ष्मण के संग समस्त कुटुम्बियों सहित गोलोक धाम चले जाते हैं। अतः भ्रातृ प्रेम का यहाँ ऐसा महान आदर्श देखने को मिलता हैं जो युग-युगान्तर तक समाज का पथ प्रदर्शन कर भ्रातृ प्रेम का आदर्श रूप सिखाता रहेगा। यह निश्चय ही प्रासंगिक है।

चारों भाइयों के जन्म के पश्चात से ही सभी में एक दूसरे के प्रति गहरी भक्ति थी, प्रेम था। इसी कारण कवि माधवदेव लिखते हैं कि लक्ष्मण सदा राम की भक्ति करते थे और शत्रुघ्न भरत की। चारों भाइयों का आपस में बड़ा मेल था-

रामत भकति सदा करन्त लक्ष्मणे।

भरत शत्रुघ्न थाकान्त मिलने ।।

भरत लक्ष्मण शत्रुघ्न महासन्त।

ज्येष्ठ रामत सदा भकति करन्त ।।(दत्तबरुवा 2016:48)

लक्ष्मण वन जाने की हठ करते हुए राम को अनेकों बार मनाते हैं। राम द्वारा तर्क देकर टाल देना उन्हें निराश कर देता है। इस पर लक्ष्मण कुपित होकर कहते हैं कि वे उन्हें वन क्यों नहीं ले जा रहे हैं। धिक्कार है उनके ऐसे जीवन पर। लक्ष्मण कहते हैं कि उन्होंने तो राम का कभी कुछ अनिष्ट नहीं किया। राम के प्रति इतना

प्रेम है कि लक्ष्मण के प्राण जल रहे हैं। अतः अगर राम अपने साथ लक्ष्मण को नहीं ले गए तो वे हृदय में तलवार से बेधकर प्राण छोड़ देंगे-

तूलत याईबाक मोक निरोधाहा किक।

किनो मन्द चिंतिलो मोहोर आछो धिक ।।(दत्तबरुवा 2016:126)

राम के राज्याभिषेक से पूर्व जब राजा दशरथ राम को यह सूचना देते हैं कि उनका कल प्रातः अभिषेक होगा। तभी राम के मन का संदेह दूर करते हुए राजा दशरथ राम के हृदय में भरत के लिए स्नेह देखकर तथा भरत का राम के प्रति जो स्वभाव हैं उसे राम के समक्ष व्यक्त करते हुए दशरथ स्वयं कहते हैं कि भरत इतना आदर्श भाई है कि वह राम का आदेश पाकर ही अन्न जल ग्रहण करता है। अतः राम के राज्य-ग्रहण में भरत को खुशी ही होगी-

तोमाक भकति मने भरत कूमारे।

तोमारे से आज्ञा पालि अन्नपान करे ।।(दत्तबरुवा 2016:105)

राम के वन जाने के पश्चात जब भरत पुनः अयोध्या लौट कर आ जाते हैं तभी राम के वन जाने की खबर सुनकर वे अत्यंत विचलित हो उठते हैं। भारत तुरंत ही राम को लौटा लाने के लिए सेना लेकर चल पड़ते हैं। जब रास्ते में गुह से भेंट होती है तथा गुह के मन में भरत के प्रति शंका देख लेते हैं तभी अपने मन के भाव तथा भ्राता राम के प्रति भक्ति का वर्णन कर गुह को संतुष्ट करते हुए कहते हैं कि राम ही भरत के जीवन प्राण सदृश हैं। राम तो उनके लिए पिता से भी बढ़कर हैं-

मईतो जानो रामेसे जीवन मोर प्राण।

पितृतो अधिक मोर रामेसे प्रधान ।।(दत्तबरुवा 2016:164)

वन में पहुँचकर भरत राम को मनाते हुए कहते हैं कि वे राज्य लौट जाएँ । भरत वन में रहकर सारे नियम आदि का पालन कर सबकुछ भोगेंगे । प्रसन्न मुद्रा में चौदह वर्ष तक फल-मूल आहार भी करेंगे,-

ईटो बनाश्रम तोमार नियम

कार्य्यक आमि गंजाईबो ।

करिया हरिष चैध्यय बरिष

बने फलमूल खाईबो ।।(दत्तबरुवा 2016:171)

सभी भाइयों का अपने ऊपर स्नेह देख राम का हृदय सदा हर्षित रहता है । इसी कारण राम सबको समान दृष्टि से प्रेम करते हैं । भरत के कारण ही वनवास का दुख भोगना पड़ा । परंतु भरत के लिए राम के हृदय में तानिक भी क्लेष नहीं उपजा । वे तो पुनः कहते हैं कि भरत के लिए वे प्राण तक तज सकते हैं, धन और राज्य क्या चीज़ है-

मोत नूबूलिला तूमि भरतर काज ।

प्राण दिते पारोहो आछोक धन राज ।।(दत्तबरुवा 2016:116)

इस प्रकार से यहाँ राम, भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न में भ्रातृ प्रेम निश्चय ही सराहनीय है तथा यह पूर्णतया प्रासंगिक भी है ।

6.2.9. जातिगत भेदभाव से अलग मानवतावादी विचारधारा

डॉ. संजय कुमार शर्मा भक्तिकाव्य की प्रासंगिकता पर विचार करते हुए उसकी भूमिका में लिखते हैं-

> जातिभेद के खिलाफ तो वैज्ञानिक प्रमाण दिये जाते हैं । आज कड़े कानूनों के प्रावधानों के बावजूद विषमता का जहर समाज में फैला है, इसे भक्तिकाव्य की 'संजीवनी' ही उपाय है । गिरते हुए सामाजिक मूल्यों के बीच संतों की वाणी आज भी समाज का 'पथप्रदर्शन' कर सकती है ।(शर्मा 2008:10)

आज के आधुनिककालीन समाज में ही ये जाति-पाती, ऊंच-नीच आदि का भेदभाव तथा ये सामाजिक कुप्रथाएँ प्रचलित हुई हैं । रामायण-काल में राम के समय ये सभी कुप्रथाएँ लेश मात्र भी नहीं थी । कालान्तर में ही इन सभी प्रथाओं का समावेश संभवतः वैदिक संस्कृति में किया गया था । राम एक उच्चकुल के राज्य परिवार के प्रतिष्ठित क्षत्रिय थे । परन्तु फिर भी उनकी मित्रता गुह चांडाल, वानर सुग्रीव तथा राक्षस कुल में जन्मे विभीषण से हुई थी । यहाँ तक कि विराध जैसे राक्षस का भी दाह संस्कार करते देखना राम को यही प्रमाणित करता है कि ये छूआ-छुत, ऊँच-नीच, जाति-भेद आदि सामाजिक कुरीतियाँ उस समय नहीं थी और यही महान आदर्श आनेवाली भावी पीढ़ी के लिए प्रेरणा दायक हैं । ये सम्पूर्ण भावनाएँ निश्चय ही प्रासंगिक हैं ।

राम जब गुह चंडाल को मित्र बना हृदय से लगा लेते हैं तथा सम्पत्ति-वस्त्र आदि भी दान में दे देते हैं, तभी राम की एक साधारण से चांडाल के प्रति ऐसी दया भावना देख तथा राम-स्वरूप साक्षात परम ब्रह्म को मित्र रूप में प्राप्त कर गुह गद-गद हो उठते हैं । वे राम को संबोधित करते हुए कहते हैं कि कहाँ वे तो चांडाल जाति के और कहाँ राम परमेश्वर भगवान । ब्रह्मा, हर तथा चारों वेद जिसकी महिमा का गुणगान करते नहीं थकते वे परम ब्रह्म राम ने गुह पर कृपा की हैं-

> कइरै मई हीन जाति चंडाल अधम ।

तूमि त्रिजगत गुरु ईश्वर परम ।।

ब्रह्मा हरे नजानन्त जाहार महिमा ।

चारि बेदे कहि यार नपावन्त सीमा ।।

अधमो उद्धारे यार लैले मात्र ।

मई केने तोमार मित्रर भैला पात्र ।।(दत्तबरुवा 2016:53)

डॉ. संजय कुमार शर्मा के शब्दों में-

> यदि राम के समान दलितों से प्रेम करने वाले तदयुगीन 'शासक' या आज के 'समाजसुधारक' हो जाएं तो समाज में 'असमानता' मिट जाए । यदि राम की तरह निषाद जैसे अछूतों को प्रेमपूर्वक 'सखा' और जटायु सहृदय जंगली गीध जाति को 'पितृवत' आदर दिया जाए । शबरी सदृश्य आदिवासी लोगों के साथ 'भोजन' किया जाए, रीछ, बानर जंगली जातियों से दोस्ती की जाय तो समाज की 'हरिजन समस्या' तथा आदिम अन्य जातियों की समस्या आर्थिक तथा सामाजिक दृष्टि से पैदा ही न हो और उनके 'पिछड़ेपन' का प्रश्न ही पैदा न हो सके ।(शर्मा 2008:91)

इस प्रकार से इस महाकाव्य में उल्लेखित जातिगत समानता का भाव निश्चय ही प्रासंगिक तथा ग्रहणीय है ।

6.2.10 सत्य-व्रत धर्म का पालन

‘सप्तकाण्ड रामायण’ में सभी जगह सत्य धर्म का पालन देखने को मिलता है। सत्य का पालन करने हेतु कोई वनवास तक दे देता है तथा कोई वचन की सत्यता की रक्षा हेतु वनवास भी ग्रहण कर लेता है। सत्य व्रत पालन हेतु कोई मित्र के शत्रु का विनाश कर उसे राज्य पर प्रतिष्ठित कर देता है तथा कोई राज्य त्याग कर उसके संग जाने को उद्धत हो जाता है। राम काव्य में सत्य के लिए जीने-मरने तक की भावना देखने को मिलती है। यह भावना निश्चय ही प्रासंगिक तथा शिक्षाप्रद है। विश्वामित्र जब राजा दशरथ के सम्मुख याचना करते हैं तब राजा दशरथ वचन देकर कहते हैं की वे ऋषि की इच्छा अवश्य पूरी करेंगे। वचन सुन लेने के बाद ऋषि विश्वामित्र राम को ही माँग लेते हैं। तभी दशरथ को भाव विभोर तथा राम स्नेह में बंधा देखकर वशिष्ठ मुनि उन्हें उनके सत्य धर्म का स्मरण कराते हैं तथा विश्वामित्र के अंचल में पुत्र राम को समर्पित्त कर देते हैं-

कदाचितो व्यर्थ नाहि बचन तोमार।

एतेके रामक दिते भैल अंगीकार।।

सिटो अंगीकार आवे लरिला किमते।

तूमि सत्यवन्त हेन जानय जगते।।

नकरिबा राजा सत्यधर्म्म परिहार।

तूमि सत्य लंघिले राखन्ता नाहि आर।।

सत्य सम धर्म्म आर पूरुषर नाई।

जानि ऋषि संगे दियो रामक पठाई।।(दत्तबरुवा 2016:58)

यहाँ पर वशिष्ठ मुनि द्वारा राजा दशरथ को सत्य धर्म का आचरण त्याग न करने की प्रेरणा देना निश्चय ही समाज को सत्य धर्म की रक्षा प्राणों से बढकर करने की प्रेरणा देता है । ये प्रसंग निश्चय ही प्रासंगीक तथा ग्रहणीय हैं ।

6.2.11 गुरु के प्रति सेवा की भावना

गुरु के प्रति सेवा भाव जीवन को प्रेरित करने तथा आगे बढ़ाने के लिए आवश्यक है । गुरु ही हैं जो हमें ज्ञान-विज्ञान आदि समस्त शिक्षा-दीक्षाओं से पुष्पित करते हैं । गुरु का महत्व इसलिए हर युग में हर काल में तथा हर शास्त्र-पुस्तक आदि में बताया गया है । गुरु के प्रति श्रद्धा 'सप्तकाण्ड रामायण' के पात्रों में निहित है । यहाँ भी गुरु के वचनों को परम आदर के साथ स्वीकार कर गुरु के ही मार्गदर्शन पर चलने की परंपरा को दर्शाया गया है । जब विश्वामित्र राम-लक्ष्मण को शिक्षा देने तथा राक्षसों का संहार करने के उदेश्य से अपने साथ आश्रम ले गए तब ताड़का और सुबाहु नामक दो राक्षसों ने भयंकर उत्पात मचा रखा था । राम जब राक्षसों का संहार करने को उद्धत हुए तब उनके मन में संदेह उत्पन्न हुआ की ताड़का एक स्त्री जाति की राक्षसी है और शास्त्र स्त्री हत्या को महापाप कहता है । अतः राम के संशय को दूर करते हुए गुरु विश्वामित्र उन्हें समझाते हैं कि ऐसी परिस्थिति में किस प्रकार से आगे बढ़ना चाहिए । गुरु विश्वामित्र राम को बतलाते हैं कि ताड़का एक राक्षसी है तथा इस राक्षसी ने अपने पुत्रों सुबाहु तथा मारीच के संग अनेकों ऋषियों तथा गौ-ब्राह्मणों को मार कर खा लिया है । अतः ऐसी गौ-ब्राह्मण की हत्या करने वाली राक्षसी स्त्री ताड़का का वध कर देने में कुछ अनीति नहीं है । आपितु राम को पुण्य ही लाभ होगा । फिर गुरु यह भी सीखाते हैं कि गुरु के वचन का पालन करने पर भी कोई दोष नहीं लगता । अतः गुरु प्रति कर्तव्य की यहाँ जो शिक्षा प्रस्तुत हुई है वह निश्चय ही प्रासंगिक है-

बिस्तरक अपकार यिजने करय ।

नाहि दोष ताक मारि पूण्यसे लभय ।।

मारीच सूबाहु दूई पूत्र ताडकार ।

मारि मारि खाईल गुरु ब्राह्मण अपार ।।

ताड़का खाईल गरु मानूष बिस्तर ।

ताक मारि पाईबा राम पूण्य बहुतर ।।(दत्तबरुवा 2016:61)

गुरु का सम्मान, उनके वचनों का आदर यहाँ जो राजा दशरथ तथा राम ने प्रस्तुत किया है वह समस्त संसार के लिए प्रेरणादायक है । कहते हैं कि यह प्रथा आज भी हमारे समाज तथा संस्कृति में उपलब्ध है । आज भी हम गुरु के प्रति श्रद्धावान तथा नतमस्तक रहते हैं । आज भी हमारे हृदय में गुरु सेवा का भाव सदा भरा रहता है । राम-राज्याभिषेक के समय राजा दशरथ की राज्य सभा में जब गुरु वशिष्ठ पधारते हैं तब राजा दशरथ स्वयं उठकर इन्द्र के समान अपने गुरु के दोनों चरणों का स्पर्श कर प्रणाम करके तथा आसन पर बिठाते हैं-

बशीष्ठिक देखि राजा चालिलंत गाव ।

येन इंद्रे नमिला गुरूर दुई पाव ।।(दत्तबरुवा 2016:104)

अतः यहाँ पर निहित गुरु-भक्ति निश्चय ही प्रासंगिक है तथा समाज के लिए अनुसरणीय भी है ।

6.2.12 कामुक स्वभाव का विनाश

हमारे धर्म ग्रन्थों तथा विभिन्न शास्त्रों और विद्वानों की वाणियों में हमें हमारे आंतरिक शत्रुओं को जो कि प्रत्येक मनुष्य के अंदर निहित रहता है का वर्णन किया गया है । इन शत्रुओं- काम, क्रोध लोभ, मोह, मद इत्यादि में काम को सबसे प्रबल तथा प्रथम भी माना जाता है । कामी पुरुष अपनी वासनाओं की पूर्ति में भयंकर पाप का स्मरण कर के भी नहीं रुकता । वह अपनी तुच्छ इच्छाओं की पूर्ति के लिए किसी भी हद तक जा सकता है । 'सप्तकाण्ड रामायण' में भी इन्द्र, शुर्पणखा इत्यादि इसी काम रूपी शत्रु से परास्त होकर अपना पतन करा बैठते हैं ।

इन्द्र जब महान गौतम ऋषि की पत्नी सती अहल्या के रूप से मोहित होकर उस ऋषि पत्नी के साथ रति क्रीड़ा करने का दुस्साहस किया तब उनका मन काम के वशीभूत होकर तथा पाप में लिप्त होकर सारे धर्मों का त्याग कर देता है । इन्द्र को इस पाप में भी अपना विनाश नहीं दिखता । वह जानते हैं कि ऋषि पत्नी का स्वप्न में भी ध्यान करने से भयंकर पाप होगा, परन्तु काम उनके मन पर नियंत्रण कर चुका होता है । वह गौतम ऋषि की अनुपस्थिति में ऋषि के गृह में प्रवेश कर जाते हैं और अपनी माया का प्रयोग कर गौतम ऋषि का छद्म वेश धारण कर अहल्या से मिलित होने की इच्छा प्रकट करते हैं । अहल्या एक पति व्रता स्त्री धर्म का पालन करने वाली तथा धर्म को आचरण में धारण करने वाली महान नारी हैं । ऋषि भेष धारी छद्म इन्द्र को वह पति जानकार पुनः धर्म का स्मरण कराती हैं कि यह ठीक नहीं । यह एक अनुचित कार्य है । वे ऋषि हैं तथा वे ही अगर इस प्रकार का अनुचित कार्य करेंगे तो सब हसेंगे । स्वयं शास्त्रों का ज्ञान रखते हुए भी किस लिए वे ऋतु के समय पत्नी से मिलित होंगे । ऋषियों का धर्म कथन है कि दिन के समय तथा ऋतुकाल में स्त्री से मिलित होने पर पाप लगता है । अतः वे यह पाप छोडकर धर्म को धारण करें-

त्रिगते जाने तुमि महा मूनिबर ।

तोमाक अकार्य्ये हासिबेक निरंतर ।।

समस्ते शास्त्रत तूमि आपूनि पार्गत ।

करिब आलाप स्त्रिक ऋतू समयत ।।

ऋषिसकलर धर्म्म एहिसे निश्चय ।

ऋतुराजे स्त्रीक आलापिले पाप हय ।।(दत्तबरुवा 2016:74)

ऋषि पत्नी अहल्या द्वारा धर्म का स्मरण कराने पर भी इन्द्र का मोह भंग नहीं हुआ । वह अपने मन को महापाप से बचा न सकें । जब महामुनि गौतम ऋषि आश्रम लौट आए और उन्होंने इन्द्र को अपने कक्ष से निकल कर भागते देखा तब वह सब बातें जान कर इन्द्र को भयंकर श्राप दे देते हैं । ऋषि श्राप देकर कहते हैं कि इन्द्र का सारा शरीर योनिमय बन जाए तथा उसका अंडकोश टूट जाए और इन्द्र को तुरंत इस महा श्राप का फल मिल गया ।

अतः यह घटना यहाँ आनेवाले समाज को यही शिक्षा देती है कि काम के वशिभूत होकर मनुष्य अपना पतन कर बैठता है । सदा धर्म का ध्यान करना चाहिए, धर्म के त्याग मात्र से ही मनुष्य का विनाश प्रांरभ हो जाता है । अतः इन्द्र जैसे देवताओं के राजा का यदि काम के वशिभूत होने पर यह हाल हो गया तो साधारण मनुष्य की गति ही क्या । अतः सदा धर्म का स्मरण कर उसके अनुकूल ही कार्य करना चाहिए, नहीं तो इन्द्र के जैसा हमारा भी पतन संभव हो सकता है । अतः यह प्रसंग निश्चय ही प्रासंगिक है ।

6.2.13. मित्र धर्म का निर्वाह

मित्र धर्म के महानतम आदर्श का यथार्थ रूप यहाँ 'सप्तकाण्ड रामायण' में देखने को मिलता है । चांडालों के राजा गुह, राक्षस कुल के विभूषण वीर विभीषण तथा वानर राज सुग्रीव से भी राम की मित्रता का यहाँ ऐसा महान उदाहरण मिलता है जैसा अन्यत्र दुर्लभ है । राम मित्र के सहायतार्थ बालि का भी वध कर देते हैं, सुग्रीव को किष्किंध्या का राजा बना देते हैं । चांडाल गुह को सम्पत्ति दे देते हैं । विभीषण को लंका जीतकर भी लंका का राज्य उसे सौंपकर लंका का राजा बना देते हैं । यही है राम की मित्रता । मित्र गुह, सुग्रीव तथा विभीषण की मित्रता भी अत्यंत सराहनीय है । गुह अपना सर्वस्व राम पर न्यौछावर कर देते हैं । सुग्रीव भी सेना सहित अपने प्राणों को ही भयंकर युद्ध की आग में झोंककर सीता जी से राम को मिला देते हैं । विभिषन भी राम को मित्र रूप में प्राप्त कर धर्म के लिए अपने अधर्मी कुल तथा बांधवों के सर्वनाश में राम की सहायता करते हैं । अतः मित्र धर्म का यहाँ बहुत ही महान आदर्शवान रूप प्रकट हुआ है ।

दशरथ-पुत्र राम ने जब वन मार्ग मे गुह को स्वागत हेतु आया देखा तब मित्र को पुनः देखकर बड़े प्रसन्न मन से उसे गले लगाया तथा उसका माथा चूम लिया । राम के हृदय में चांडाल मित्र होने की बात का तनिक भी क्षोभ नहीं है परंतु मित्र से पुनः मिलन की खुशी का ठिकाना नहीं है-

दुई बाहु मेलि रामे सावटि धरिला ।

ग्रीवत धरिया माथे चूम्बन करिला ।।

किनो शुभ दिन आजि देखिलोहो तोक ।

एराइलोहो क्षणकते हृदयर शोक ।।(दत्तबरुवा 2016:137)

सुग्रीव यह जानता था कि राम परम ईश्वर हैं। उनके संग मित्रता का सौभाग्य प्राप्त होने पर वह अत्यंत प्रसन्न हुआ-

रघुवंशे शिरोमणि साक्षाते ईश्वर देव

तूमि सबे कैलो मित्रवती ।(कंदली 1959:242)

सुग्रीव की यही भक्ति तथा पूर्ण समपर्ण और निश्छल हृदय देख भगवान प्रण लेते हैं कि वे भक्त-द्रोही बालि का भी वध करेंगे, जिसमें कोई दोष नहीं है।

लंका का राज्य जीत लेने पर भी राम के मन में स्वर्णमयी लंका राज्य के प्रति तनिक भी मोह नहीं उपजा। उन्होंने सम्पूर्ण लंका का राज्य तथा धन-संपत्ति विभिषण को ही सौंप दिया। राम तो मित्र धर्म का निर्वाह कर मिश्र की सराहना करने लगे कि विभिषण राम के कार्य साधन के साथी हैं, जिनकी सहायता से रावण जैसी विपत्ति से निस्तार पा सकें। इसलिए राम कहते हैं कि उनका बस एक ही मनोरथ है कि विभिषण को वे राज्य सौंप दे-

सार्थक मोहोर मित्र अति साधनर।

याहार प्रसादे भैलो दुर्गति निस्तार ।।

एकेखानि आछे मोर मनोरथ काज।

प्रतिज्ञा साफलि बिभिषणे देओं राज ।।(दत्तबरुवा 2016:444)

इस प्रकार से यहाँ मित्र धर्म के आदर्श रूप का यहाँ दर्शन होता है जो सार्थक है तथा प्रासंगिक भी है।

6.2.14. सत्संगति की प्रेरणा

तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' में सत्संगति की महिमा का व्यापक गुणगान किया गया है । यहाँ भी सत्संग के सुपरिणाम की व्याख्या तथा सत्संग की प्रेरणा दी गयी है । मध्यकाल में अवतरित श्री चैतन्य महाप्रभु ने साधू संग की व्याख्या करते हुए सनातन गोस्वामी को उपदेश देते हुए कहा था कि सारे शास्त्रों का निर्णय है कि शुद्ध भक्तों के साथ क्षण-भर समय व्यतीत करने से ही मनुष्य सभी प्रकार की सफलता प्राप्त कर सकता है,-

साधु-संग,' 'साधु-संग'– सर्व शास्त्रे कय ।

लव-मात्र साधु-संगे सर्व-सिद्धि हय ।।(प्रभुपाद और गोस्वामी, द्वितीय 2013 :129)

यहाँ पर शुद्ध भक्तों या साधु पुरुषों की संगति का इतना परिणाम बताया गया है कि शुद्ध भक्तों की संगति मिल जाती है तब मनुष्य के सारे मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं । अतः 'सप्तकाण्ड रामायण' में भी कविराज शिरोमणि माधव कन्दली ने यही साधु संग की महिमा का गुणगान गया है, उसकी प्रेरणा दी है । यह प्रेरणा निश्चय ही ग्रहणीय है तथा प्रासंगिक भी है ।

'सप्तकाण्ड रामायण' के अंत में कविराज शिरोमणि माधव कन्दली अयोध्याकाण्ड में सत्पुरुषों, भक्तों की संगति आदि पर सुंदर बात कही है । अयोध्याकाण्ड में महाकवि माधव कंदली लिखते हैं कि सदैव राम का नाम सुनना चाहिए और कभी भी दुर्जनों की संगति नहीं करनी चाहिए । कुटिल मंथरा के एक क्षण संग करने के फलस्वरूप कैकेयी का जीवन विषाक्त हो गया तथा सम्पूर्ण अयोध्या नगरी को भी दुखी होना पड़ा था । अतः

जब राम तथा राम के समस्त भक्तों को दुख सहन करना पड़ा तो हम साधारण मनुष्यों की क्या गति है । अतः सत्संगति सभी शास्त्रों का सार कथन है-

शुना निरन्तर दुर्ज्जन जनर

नकरिबा जानि संग ।

एकेजनी दुष्ट कुजीर निमिते

ईश्वररो छज भंग ।।

अयोध्यात नगरे आछेयत जन

रामत सबे भकत ।

मंथरात हंते पाइल यत दुख

कहिबे कोने शकत ।।(दत्तबरुवा 2016:178)

इस प्रकार से सत्संगति की महिमा यहाँ गायी गयी है जो निश्चय ही प्रासंगिक है ।

6.2.15 जीवनोपयोगी नीतियाँ तथा आदर्श जीवन शैली

डॉ. संजय कुमार शर्मा भक्तिकाव्य की प्रासंगिकता पर विचार करते हुए लिखते हैं-

भक्तिकाल का साहित्य मनुष्य को मनुष्य से जोडनेवाला साहित्य है । यह साहित्य 'मानवता' की 'अमरनिधि' था, है और आगे भी रहेगा । भक्तिकालीन साहित्य मनुष्य के भीतर जीवन-

मूल्यों के प्रति आस्था को दृढ़ बनाता है। यह काव्य स्पष्ट करता है कि 'जीना महत्वपूर्ण नहीं है', कैसे जिया जाय यह महत्वपूर्ण है।(शर्मा 2008:09)

'सप्तकाण्ड रामायण' में भी 'रामचरितमानस' की ही भाँति जीवनोपयोगी नीतियाँ तथा आदर्श जीवन शैली के अनेकों सिद्धान्त दिए गए हैं। यह सिद्धान्त मानव जीवन को जीने की तथा धर्म पूर्वक आचरण करते हुये चलने की शिक्षाएँ देती हैं। ये नीतियाँ तथा आदर्श जीवन शैली निश्चय ही प्रासंगिक तथा जीवनोपयोगी हैं। यहाँ हम 'सप्तकाण्ड रामायण' में उल्लेखित उन्हीं कुछ नीतियों या शिक्षाओं का उद्घाटन नीचे करेंगे।

अयोध्याकाण्ड में कविराज शिरोमणि माधव कंदली ने कोयल, स्त्री, पुरुष तथा तपस्वी के गुणों की चर्चा की है। कविराज माधव कंदली ने इनकी उपमा द्वारा इनका गुण बखाना है। राम वन गमन के समय जब विदा लेते समय माता कौशल्या सीता को स्त्री धर्म की शिक्षा देते हुए समझाती हैं कि पति का साथ कभी न छोड़ें। तभी सीता कौशल्या माता को आश्वासन देते हुए अपने हृदय के भावों को व्यक्त कर कहती हैं कि माता चिन्ता का त्याग कर दें। सीता अधम स्त्री नहीं हैं जो पति का साथ छोड़ दें। पति के रहने पर ही आभूषण का अस्तित्व है। पति के बिना आभूषण भी भस्म के समान है। पिता और भाई का दिया हुआ दान या धन तो सीमित होता है। उनके द्वारा विवाह के उपरांत दिया गया धन सदैव साथ नहीं रहता। पुत्र का धन ही कितना भी रहे परन्तु हाथ नहीं मिलता। परन्तु पति के धन को ही नारी सुख पूर्वक भोगती है, खर्च करती है तथा दान भी करती है। वह उसका सदा अपना होता है। इसीलिए कौन स्त्री पति का अपमान करावेगी या उसे त्याग देगी। उसके लिए तो वही सब कुछ होता है। सीता कहती हैं कि जिस प्रकार से कोयल अपने मधुर गीत से ही सुशोभित होती है, उसी प्रकार नारी भी पति के साथ पतिव्रत धर्म पालन से ही शोभा पाती है। जिस प्रकार विद्या रूपी गुण से पुरुष सुशोभित होता है तथा एक तपस्वी क्षमा रूपी गुण से शोभा पाता है ठीक उसी प्रकार स्त्री भी पति से हीं

शोभा पाती है । अतः सीता कहती हैं कि वे राम को ही जन्म-जन्मांतर में अपने पति रूप में पाना चाहती हैं तथा कौशल्या ही उनकी सास बनें-

सीताये बोलन्त माव तेजा चिन्ता शोक ।

इतर नारीर सम नेदेखिबा मोक ।।

सुस्वामी थाकन्ते शोभे सबे अलंकार ।

स्वामीहीन हैले होवेसबे छारखार ।।

परिमित धन मात्र देन्त बाप भाई ।

पुत्रत थाकिले धन हाते तो नापाइ ।।

स्वामीर धनक सुख भोगे करे दान ।

कोन नारि करावे स्वामीक अपमान ।।

कोयल शोभन होवे सुशोभन रावे ।

नारीगण शोभे पतिब्रता धर्म्म भावे ।।

पुरुष शोभन गुण सद विधा भारे ।

तापस शोभन होवे क्षमा अलंकारे ।।

शुनियो गोसानि बोलो सीता परबासु ।

जन्मे जन्मे राम स्वामी तुमि हैबा शाशु ।।(दत्तबरुवा 2016:131)

राम-वन-गमन के पश्चात जब भरत राम को लौटा ले जाने आएं । तब राम ने बहुत समझाकर भरत से कहा कि वे अयोध्या लौट जाएं तथा शासन व्यवस्था संभालें, राज्य भोक करें । इस बात पर जब भरत नहीं मानते हैं तब राम नीति की कुछ बातें कहते हैं कि कोई जान बूझकर ब्राह्मण-वध का पाप नहीं करेगा । कोई जान बूझकर शराब आदि अभक्ष्य पेय नहीं पान करेगा । कोई भी ब्राह्मण के स्वर्ण की चोरी नहीं करेगा । कोई जान बूझकर ज्ञानी पर नारी का संग करने का पाप नहीं करेगा तथा कोई दास होकर स्वामी का आदेश नहीं ठुकराएगा । कोई भी जान बूझकर गुरु की बातों की अवज्ञा नहीं करेगा । अतः जन बूझकर यह सारे महापाप कोई नहीं करेगा । अतः वे भी पिता के वचन का उल्लंघन करने का पाप नहीं करेंगे । राम कहते हैं कि वे राज्य नहीं लौटेंगे-

जानिया कमन जने ब्राह्मण बधिब ।

कमन अधमे सूरापानक करिब ।।

कोनजने ब्राह्मणर सूवर्ण हरिब ।

अगम्या गमन पाप कमने करिब ।।

भृत्य हुया ईश्वरर बोल णकरिब ।

कमन मूगुधे गुरुबचन बाधिब ।।

ईसब पातेक करिबोहो केन जानि ।

णजाईबो देशक बुलिलोहो सत्य बाणी ।।(दत्तबरुवा 2016:175)

‘सप्तकाण्ड रामायण’ में तो राक्षस भी कहीं-कहीं धर्म की बातें बताते हुए नज़र आते हैं । अतः उनके द्वारा कही गयी धर्माचरण की शिक्षा ग्रहणीय ही है । अरण्यकाण्ड में बिराध राक्षस कहता हुआ नज़र आता है कि धर्म का विरोध करने वाले या धर्म का आचरण न करने वाले का दर्शन भी नहीं करना चाहिए । उसे देखना भी पाप ही होता है,-

धर्म्म बिरोधीक देखीबाक नूहि योग ।(दत्तबरुवा 2016:183)

मानव स्वभाव का विवेचन करते हुए राम सीता-वियोग में कुपित होकर लक्ष्मण को सीख देते हैं कि कभी भी शांत रहने वाला व्यक्ति पूजित नहीं होता है । जो क्रूर तथा बलवान होता है संसार में वही पूजनीय है । अतः ज्यादा शांत स्वभाव होने पर अपना नुकसान ही होता है । राम ग्रहों का उदाहरण देते हुए लक्ष्मण को संकेत करते हुए कहते हैं कि क्रूर ग्रहों में शनि को सभी पूजा तथा दान दक्षिण देते हैं । परन्तु अत्यंत सौम्य तथा शीतल गृह चंद्रमा के लिए कोई फूल-पत्ति भी नहीं चढ़ाता । अतः शांत और शीतल रहने वाले प्राणी को कोई भी कुछ नहीं देता-

शुन शुन बोलो भैयाई लक्ष्मण

क्षमिबाक नूयूवाय ।

शीतल प्राणीक जानिबि निश्चय

केहोजने नडराय ।।

शनैश्चर क्रूर – ग्रहर नामत

सर्ब्बस्व सबे तेजय ।

आती साम्य चंद्र ग्रहर निमित्ते

फूल पातो ने दिवय ।।(दत्तबरुवा 2016:226)

एक और प्रसंग में सुंदरकाण्ड में लंका पर चढ़ाई करने हेतु समुद्र से मार्ग माँगने के लिए राम तीन दिन तक कुश बिछकर भूमि पर सोये । राम द्वारा सागर से विनय पूर्वक आग्रह करने पर भी सागर को कुछ फर्क नहीं पड़ा । तब जाकर राम क्रोध से लक्ष्मण से यही कहते हैं कि शीतल रहने पर, शांत रहने पर चंद्रमा की भाति सभी अवहेलना करते हैं । शनि की तरह कूपित होने पर सभी पूजा करते हैं । अतः राम ने क्रोध से धनुष पर बाण चढ़ाकर अग्नि बाण का संधान किया, समस्त सागर का जल सुखने लगा राम का प्रचड़ क्रोध देखकर सागर हाथ जोड़कर नतमस्तक हो राम के सम्मुख प्रस्तुत हुआ तथा विनय करने लगा-

कूश पारि तिनि दिन निद्राय आछिल ।

रामक सागरे तेहो देखायो निदिल ।।

जागिलन्त रामे क्रोध रकत नयन ।

लक्ष्मण संबुधिया बुलिला बचन ।।

आशकत देखि मोक न करय डर ।

देखा मोक बार हेला करय सागर ।।

मृदु देखि कटाक्ष न करे आमासाक ।

उचित फ़लक दिओं निदिबाहा हाक ।।

कदाचितो कार्य्य निसिजिबे मृदु भावे ।

शांत मूर्ति भैले ताक केहो न डरावे ।।

शनैश्चर भय सबे सर्ब्बस्व तेजय ।

सोमग्रह नामे फूल पातको नेदय ।।

धनुखान बापू मोर हाते गुण माजि ।

अगाध सागर मान शुकाइ थओं आजी ।।

अग्निशर मारि आजि शुषी एरो जल ।

भरि गरि करि याओक बानर सकल ।।

एहिबुलि रामे मरिलन्त अग्निवाण ।

शुषील सकले जल देखि विधमान ।।

तरत परिया सबे शिशु घरियाल ।

अग्नि दगध देहा देखि लाल काल ।।

शुकाइ सकले जल जन्तु सबे मरे ।

आसिलन्त सागर रामर पाशे डरे ।।(दत्तबरुवा 2016:328)

यहाँ पर यही शिक्षा मिलती है कि कभी-कभी सौम्य तथा शांत भाव से कार्य सिद्ध नहीं होता तब कठोर बनकर धर्म के कार्य को करने के लिए कठीन भी बनना पड़ता है । यह प्रसंग निश्चय ही प्रासंगिक है ।

इंद्रजीत जब अपनी माया का प्रयोग कर आकाश में अदृश्य होकर सारे युद्ध क्षेत्र को अस्त-व्यस्त कर परास्त करने लगता है तब लक्ष्मण अत्यंत कुपित होकर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कर सबको समाप्त कर देने की आज्ञा

राम से माँगते है । तभी राम उन्हें ऐसा करने से रोकते हुए नीति की शिक्षा देते हुए कहते हैं कि जो विशिष्ट व्यक्ति होते हैं वह कभी किसी एक के अपराध का दंड सभी को मार कर नहीं देते । यह उनके लिए अधार्मिक है ।

लंकाकाण्ड में इंद्रजीत-वध के समय जब इंद्रजित अपने चाचा विभिषण को नीचा कहकर कटु वचन कहता है तभी धर्म को धारन करने वाले विभिषन इंद्रजित से कहते हैं कि राक्षस कुल में उत्पन्न होने पर भी उन्होंने कभी भी धर्म का त्याग नहीं किया । परन्तु ये दोनों बाप बेटे ने सदैव ही अधर्म का पथ ही चुना है । अतः अब दोनों अपने पापों का उचित दंड पाएंगे-

राक्षस कुलन्त आमि उतपति लभिलोहो

धर्म्म छारि नजानिलो आन ।

आपोनार कथा निया आनत लगास आनि

बोला मोक पापे से प्रधान ।।

लक्ष्मणर शेर तोर आटि मुटि भांगिबेक

अन्याय करिलि ययत ।

बापे पुते तोर आर देखा देखि नहैबैक

रणमाजे प्राणे हुइबि हत ।।(दत्तबरुवा 2016:406)

विभिषन तथा रावण और मेघनाद की दशा देखकर यहाँ यही शिक्षा मिलती है कि रावण तथा मेघनाद ने सदैव पाप का आचरण किया है । इसीलिए उनका अंत हुआ । परन्तु राक्षस कुल में ही उत्पन्न होकर भी विभिषन ने धर्म का त्याग नहीं किया तथा धर्म का साथ दिया । अतः उसका सुयश सारे संसार में फैल गया तथा

उसे ही वास्तव में लंका का राज्य प्राप्त हुआ । यह प्रसंग हमें यही शिक्षा देती है कि हमारा जन्म चाहे किसी भी नीच कुल में ही क्यों न हुआ हो परन्तु हमें कभी भी धर्म के आचरण तथा गुण का त्याग नहीं करना चाहिए । राम के चरण में सदा मन लगाकर उनकी भक्ति धर्म पूर्वक करनी चाहिए ताकि हमारा भी उद्धार हो सके यह प्रसंग सदा से ही प्रासंगिक तथा अनुसरणीय है ।

6.3. रामभक्ति की प्रासंगिकता

अभी हमने देखा कि राम की शरणागति में पद दलित सुग्रीव तथा विभिषन को भी जगत में सम्मान, भक्ति तथा राज्य का शाशन मिल गया । वे दोनों ही राजा बन गए । राम की भक्ति निश्चय ही समस्त मानव जाति का कल्याण कर उसका दोनों लोक सवार देती है । राम के इसी गुण का गान करते हुए आदिकाण्ड में माधवदेव लिखते हैं कि राम का चरित्र कानों से सुनना तथा उनके नाम को मुख में सदा जपना ही सारे धर्मों का सार है । राम ही सर्वोत्तम सर्वसार अनुपम परम धर्म तथा सुहृद एवं सखा हैं । उन्हीं के द्वारा संसार का उद्धार संभाव है । अतः उनके नाम तथा गुण का सदा श्रवण तथा कीर्तन करना चाहिए-

रामर चरित्र श्रवणेसे जाना

समस्त धर्म्मर सर ।

हेला परिहरि शुना कर्णभरि

तेवेसे पाईबा निस्तार ।।

रामेसे परम धर्म्म अनूपाम

सर्ब्बोत्तम सर्ब्बसार ।

रामेसे सुहृद सोदर बांधव

तेहेसे जगत उद्धार ।।(दत्तबरुवा 2016:50)

इसी के आगे एक स्थान पर पुनः माधवदेव कहते हैं कि ईश्वर की भक्ति से ही जगत का तथा जीव का कल्याण है,-

ईश्वरर भकतिसे जीवर कुशल ।(दत्तबरुवा 2016:51)

समस्त शास्त्रों द्वारा अनुमोदित है कि यह रामभक्ति दुर्गति तारने वाली है । यही बात बताते हुए अयोध्याकाण्ड में भी माधव कंदली कहते हैं कि मन को स्थिर करके सदा हरि का नाम लेना चाहिए,-

रामर भकति एहि से सम्पत्ति शास्त्र सम्मत ।

थिर मन करि बोला हरि हरि लागोक जुइ पापत ।।(दत्तबरुवा 2016:267)

इसी के आगे अनेकों बार कविजनों ने राम भक्ति की महिमा का गुणगान किया है । राम की भक्ति ही मुक्ति का साधन तथा समस्त शास्त्रों का सार तत्व है । यह राम नाम धर्मशिरोमणि है जो संसार से पार उतारने वाली एक मात्र भक्त का धन है । अतः राम का नाम स्मरण करना चाहिए जिससे दुख की यातनाएँ मिट जाएं तथा भक्ति का अमृत लाभ हो सके-

रामर चरित्र परम अमृत शुना

समाजिक जन ।

धर्म्म शिरोमणि संसार तरणी

इसे भकतर धन ।।

राम गुण गान   मुक्ति बित्त मूल

सकलो शास्त्रर सार ।

एहि मुख्य काम   बोला राम राम

गुछोक दुख-निकार ।।(दत्तबरुवा 2016:172)

6.4 निष्कर्ष

इस प्रकार से यहाँ देखा गया कि सप्तकाण्ड रामायण में मातृ-पितृ भक्ति हो या मित्र धर्म निर्वाह की प्रवृत्ति, स्त्री की पतिपरायणता हो या भ्रातृ का कर्तव्य, नीति और आदर्श हो या गुरु भक्ति तथा वैदिक नियमों का पालन सभी दृष्टि से यह काव्य हर रूप में ही सराहनीय है तथा प्रासंगिक भी है । सैकड़ों वर्षो से यह भारतीय जनमानस को आह्लादित भी करती आ रही है तथा उन्हें उन तमाम नैतिक मूल्यों तथा आदर्शों से परिचित करवाती भी आ रही है, जो नीति तथा सिद्धान्त किसी भी सभ्य समाज की वह मजबूत पकड़ है जो सम्पूर्ण जनमानस को एक मुट्ठी में पकड़े रखती है । यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि ये सारे मूल्य, ये सारे आदर्श तथा इन महान चरित्रों की सारी नीतियाँ इसी प्रकार आगे भी समस्त संसार का पथ प्रदर्शन करती ही रहेंगी ।